पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर - सरल जीवनी

लेखक संकलक - पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य

-

गरीबी को प्रयोग अभिशाप मानते हैं और ऐसा सोचते हैं कि जो गरीब होता है, वह संसार में कोई उन्नति नहीं कर सकता और ना ही कोई उल्लेखनीय कर्म ही| किंतु पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने अपने जीवन द्वारा इस मान्यता को उन लोगों की निराश आत्मक भावना सिद्ध कर दिया, जो परिश्रम तथा पुरुषार्थ का महत्व नहीं समझते अथवा गरीबी का बहाना लेकर अपनी अकर्मण्यता तथा योग्यता को छुपाना चाहते हैं| अन्यथा गरीबी एक ऐसा अवसर है, जो उन्नति एवं प्रगति की संभावनाएं उपस्थित करता है|

यह कथन केवल सूक्ति मात्र नहीं है| इसके पीछे एक मनोवैज्ञानिक यथार्थ निहित है| वह यह कि धन की सुविधा में कोई मिले ही ऐसे होते हैं, जिन्हें जीवन में कोई उल्लेखनीय प्रगति करने की प्रवृति होती है, अन्यथा अधिकांश वह लोग उसके उपभोग में लगकर मानव जीवन की सार्थकता भुला बैठते हैं, जबकि निर्धनता की स्थिति एक तो स्वयं ही निरर्थक बहुओं की सुविधा उपस्थित नहीं होने देती, जिससे मनुष्य की बहुत सी शक्ति सदा समय सुरक्षित रहता है| दूसरे वह किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए एक चुनौती होती है, जिसकी कठिनाइयां कर्मठता की ओर अग्रसर करती है| किंतु निर्धनता के बीच इस सोभाग्य का अधिकारी होता वही है, जो उस स्थिति को आत्मा से स्वीकार नहीं करता और उसे बदल डालने में प्रयत्न एवं परिश्रम की किसी भी सीमा तक बढ़ जाने में कृपणता नहीं करता|

पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने गरीबी को एक चुनौती माना और अपने अखंड अध्यवसाय केबल पर उसे जीतकर यह प्रमाणित कर दिया कि संसार में किसी भी

कृतत्वशील व्यक्ति के लिए निर्धनता की स्थिति जीवन विकास में अवरोध नहीं बन सकती |
पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने ना केवल आर्थिक प्रगति करके दिखा दी, वरन उन गुणों को भी आत्मसात करके दिखा दिया; जो मनुष्यता की शोभा, जीवन की महत्ता और समाज के संराधक होते हैं, और जिनका आगरा अनायास ही आत्मा की ओर खुलने वाले गुर्जरों को का उद्घाटन कर देता है, जिसके द्वारा ईश्वरीय आलोक का समागमन होता है।

कलकत्ता से 20 मील दूर पश्चिम में स्थित वीर सिंह गांव के जिस परिवार में 26 सितंबर 1820 को पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर का जन्म हुआ था, वह कितना गरीब था? इसका अनुमान इससे ही लगाया जा सकता है कि उनके पिता ठाकुरदास न जाने कितने दिन जीविका की चिंता से, भूखे प्यासे कलकत्ता की सड़कों पर फिरें हैं और उन्हें दो रुपए महावार की एक नौकरी मिली तो घर में उत्सव जैसी खुशी छा गई। ऐसे निर्धन परिवार में एक अध्यवसाय तथा बूढ़ी बालक ने जन्म ले कर अपने साथ अपने उस पल और कुटुंब को भी स्मरणीय बना दिया, जिसको सामान्य जीवन की आवश्यकताएं भी दुर्लभ थी।

किसी प्रकार के लिए तथा संतोष के सहारे ही कर ईश्वर चंद्र ने गांव की पाठशाला में प्रवेश पाया और परिश्रम पूर्वक पढ़कर उसकी सारी कक्षाएं यथा समय पास कर ली। अब इसके आगे पढ़ाई के कोई साधन न थे और उनके पिता ने उन्हें बिठाल दिया। आगे की शिक्षा कलकत्ता में संभव थी। यह परिवार के बस की बात न थी।तब भी उनके पिता के मस्तिष्क से यह बात ना निकली कि वह संतान को सुयोग्य बनाने के लिए अपने कर्तव्यों को पूरा नहीं कर पा रहे हैं.

श्री ठाकुर दास की यह कसक उन्हें कलकत्ता में ईश्वर चंद्र की शिक्षा के लिए अवसर खोजते रहने की प्रेरणा देती रही।वह जैन महानुभाव के यहां कार्य करते थे, वह बड़े सज्जन व्यक्ति थे और ठाकुरदास में अपनी इमानदारी तथा परिश्रम से उनकी प्रसन्नता भी प्राप्त कर ली

थी।एक दिन अवसर पाकर उन्होंने अपने मालिक श्री जगदुर्लभ सिंह से अपनी इच्छा का प्रकाशन किया और बताया कि ईश्वरचंद्र का मन पढ़ने में बहुत लगता है।

उसने वीर सिंह की पाठशाला की सारी कक्षाएं प्रथम श्रेणी में पास कर ली है।गांव के शिक्षक श्री कालीकांत का कहना है कि ईश्वर बड़ा चपल बुद्धि लड़का है।यदि उसे पढ़ने का अवसर मिलता रहा तो एक योग्य व्यक्ति बन सकता है, नहीं तो उसकी बुद्धि सदुपयोग के बिना गलत मार्ग पर जा सकती है और ऐसी अवस्था में वह खुद रवि होकर समाज के लिए कष्टदायक बन सकता है।मेरा अपना जो कुछ बनना था, वह तो बन चुका किंतु यह अवश्य चाहता हूं कि ईश्वर चंद्र कुछ पढ़ लिखकर किसी योग्य बन जाता, नहीं तो लोग यहां लांछन लगाएंगे कि जब योग्य बना सकने की क्षमता नहीं थी तो बच्चों को जन्म देने का क्या अधिकार था ?

मेरा निवेदन है कि आप इस संबंध में मेरी कुछ सहायता करें, जिस के उपलक्ष में मुझसे कोई अतिरिक्त क** भी ले सकते हैं।
श्री जगत दुर्लभ सीखने ठाकुरदास में पुत्र की प्रगति के लिए एक सच्चे पिता की पीड़ा देखी और एक अच्छे मनुष्य के नाते सहायता करने का वचन दे दिया।

श्री ठाकुर दास जी तुरंत गांव आये और ईश्वर चंद्र को साथ लेकर कलकत्ता चल दिए। 20 मील की दूरी थी और सवारी का कोई साधन नहीं था। अस्तु, पिता पुत्र उस लंबी यात्रा पर पैदल ही चल चल पड़े। इस समय ईश्वर चंद्र की आयु लगभग 8 वर्ष की थी।ठाकुरदास जानते थे कि 20 मील की पैदल यात्रा उनके लिए कठिन थी और गोद में लेकर भी नहीं चला जा सकता था।निदान उन्होंने उसे बहलाये रखने के लिए शिक्षा की उपयोगिता तथा उसकी प्रगति के उपायों पर बातें करना प्रारंभ कर दिया। साथ ही मैं उत्साहित करने के लिए मील के पत्थरों पर लिखे अंक दिखला कर यह भी कहते चले कि अब हम लोगों ने इतना मार्ग पूरा कर लिया है कि कलकत्ता केवल इतने मिल रह गया है।ईश्वरचंद्र बड़े

ध्यान से पिता की बातें सुनता रहा और मील के पत्थरों पर लिखे अंग्रेजी अंक देखता और हृदयंगम करता चला गया।मानव-मस्तिष्क का सहज-स्वभाव होता है की वह जिस दिशा और वातावरण में सक्रिय रखा जाता है, उसी और प्रगति करता और उसी के अनुसार गुण दोषों को ग्रहण करता रहता है.

पिता के इस वार्तालाप से ईश्वर चंद्र के मस्तिष्क में शिक्षा का महत्व और उसे प्राप्त करने के लिए एकाग्र परिश्रम की आवश्यकता का विश्वास गहराई के साथ बैठ गया।उसके हृदय में शिक्षा के प्रति जगी उत्सुकता ने उसे क्रांति का अनुभव नहीं होने दिया। वह निरंतर उत्साह के साथ चलता रहा.

जिस प्रकार धैर्य का सहारा लेने से आपत्ति और आख्यान के सहारे रात कट जाती है, उसी प्रकार वार्तालाप के सहारे उन दोनों का रास्ता भी सफलतापूर्वक कट गया और वह कलकत्ता में अपने गंतव्य स्थान पर पहुंच गए। श्री जगदेव सिंह ने बच्चे की योग्यता परखने के लिए उससे पूछा कि, बेटे क्या पढ़ लिख सकते हो? ईश्वर चंद्र ने तुरंत उत्तर दिया कि मैं बांग्ला लिख पढ़ रखने के साथ अंग्रेजी के अंक भी लिखकर और जोड़ सकता हूं। श्री जगदुर्लभ सिंह ने उसे अंग्रेजी अंको का एक छोटा बिल जोड़ने को दिया। ईश्वर चंद्र बिना किसी झिझक के बिल ले लिया और विश्वासपूर्वक उसे जोड़कर दिखला दिया। ठाकुरदास को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ; उन्होंने पूछा कि-- क्या गांव की पाठशाला में तुम्हें मअंग्रेजी की गिनती पढ़ाई गई है? ईश्वरचंद्र ने बतलाया कि अंग्रेजी के अंक उसे पाठशाला में नहीं सिखाए गए हैं, बल्कि उसने उन्हें रास्ते में मील के पत्थरो से सीख लिया है।ठाकुरदास को जहां बच्चे की ग्रहणशीलता पर हर्ष हुआ, वहां यह भी विश्वास हो गया कि प्रेमपूर्वक बच्चों पर किया हुआ कोई भी प्रयास व्यर्थ नहीं जाता है।

शिक्षा के अनुसार ही बच्चों का जीवन ढलता है, इसलिए इस विचार से ईश्वर चंद्र भी कहीं तत्कालीन विद्यार्थियों की तरह बाबू गिरी की ओर प्रेरित होकर भारतीयता से विमुख ना

हो जाए और समाज के लिए अनुपयोगी सिद्ध हो, ठाकुरदास ने उन्हें कलकत्ता के संस्कृत कॉलेज में प्रवेश दिलाना ही उचित समझा।

ईश्वरचंद्र के लिए संस्कृत सर्वदा एक नई भाषा थी, किंतु उन्होंने साहस तथा परिश्रम पूर्वक उसे पढ़ना शुरू किया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वह कॉलेज के सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी बनकर रहेंगे। इसके लिए कितना ही परिश्रम क्यों ना करना पड़े, करेंगे। उन्होंने ऐसा किया भी।कॉलेज में पूरी तन्मयता के साथ पढ़ने के बाद वह घर पर भी बहुत समय तक पढ़ा करते थे।सवेरे एक पहर रात रहे, वह उठ जाते थे और अपना पाठ याद करने लगते थे।उसके बाद में अपने साथ दो-तीन आदमियों का भोजन बनाते थे, बर्तन साफ करते थे।घर की सफाई और बाजार से सारा सामान लाना भी उन्हीं का काम था।लकड़ी चीरने और पानी भरने के साथ इन्हें पिता और छोटे भाई के कपड़े भी हाथ से साफ करने होते थे।इतना सब परिश्रम करने के बाद भी वह कभी थकान की शिकायत नहीं करते थे।इस प्रकार वह शाम को भी सारा काम करते और आधी रात तक खुद पढ़ने के साथ अपने छोटे भाई को भी पढ़ाते थे.

रात में पढ़ते-पढ़ते जब कभी इनके दीपक का तेल समाप्त हो जाता था तो यह जाकर सड़क पर लगी लालटेन के नीचे बैठ कर पढ़ते थे और जब तक दिन का पाठ याद न करने के बाद, दूसरे दिन के पाठ की तैयारी नहीं कर लेते थे, कभी सोते न थे.
वह अपना पाठ नित्य नियम से पिता को सुनाकर उसकी पुष्टि कर लिया करते थे.
विद्यासागर के इस महामानवीय परिश्रम का फल यह हुआ कि उन्होंने कॉलेज की परीक्षाएं छह-छह माह में ही उत्तम श्रेणी में पास कर ली और 19 वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते कॉलेज के सर्वोत्तम विद्यार्थी होने का अपना निश्चय ही पूरा नहीं कर लिया, बल्कि व्याकरण, साहित्य, अलंकार, स्मृति, तर्क, वेदांत आदि विषयों में भी पारंगति प्राप्त कर ली। माध, किरात, मेघदूत, शकुंतला, उत्तर रामचरित्र, मुद्राराक्षस, कादंबरी, विक्रमोर्वर्षीय, दशकुमारचरित, कौमुदी, निरुक्त, मिताक्षरा, बाणभट्ट, मनु

संहिता आदि ग्रंथ तो उन्हें कंठस्थ से ही हो गए थे।विद्याध्ययन में निरंतर परिश्रम करने के परिश्रम करने से इनके स्मृतिकोष यहां तक खुल गए थे कि वह जिस श्लोक, अथवा प्रकरण को दो-एक बार पढ़ लेते थे, वह उन्हें स्मरण हो जाते थे। उस समय के संस्कृत विद्वानों में श्री ईश्वर चंद्र का सर्वश्रेष्ठ स्थान था।संस्कृत की लिखी उनकी गद्य तथा पद्य की रचनाएं इतनी शुद्ध तथा श्रेष्ठ होती थी कि उस संबंध में इन्होंने अनेकों बार तत्संबंधी पुरस्कार तथा प्रमाण पत्र प्राप्त किए।कॉलेज की योग्यता संबंधी कोई भी छात्रवृति ऐसी न थी, जो ईश्वरचंद्र ने प्राप्त न कर ली हो।

अन्य विद्यार्थी उनकी इस सफलता को देख कर कहा करते थे कि ईश्वर चंद्र तुम बड़े भाग्यवान हो।हरसाल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते हो और हर कक्षा की छात्रवृति पा जाते हो।ईश्वरचंद्र उनका समाधान करते हुए कहा करते थे कि इसमें भाग्य की कोई बात नहीं है।यह सब उस परिश्रम का सुफल है, जिसे मैंने प्रयत्नपूर्वक अपने जीवन में स्वभाव सिद्ध किया है।परिश्रम मानव जीवन का देवता है, जो अपनी साधना से प्रसन्न होकर संसार का हर अभिष्ट प्रदान कर देता है।आप लोग भी उसी श्रम देवता की उपासना कीजिए। आप भी प्रथम आने और छात्रवृत्तियां पाने लगेंगे।

यद्यपि श्री ईश्वरचंद्र जी इतने गरीब थे कि आधा पेट भोजन तो मामूली बात थी, सप्ताह में दो-एक बार निराहार भी रहना पड़ जाता था, तथापि ह्रदय से इतने उदार तथा दयालु थे कि अपनी छात्रवृत्तियों का अधिकांश भाग निर्धन विद्यार्थियों की सहायता में खर्च कर देते थे, जब वह किसी विद्यार्थी को फटे-पुराने कपडे पहने देखते थे, उनको ऐसा लगता था, मानो उनका भाई ही कपड़ों के अभाव में चीथड़े लपेटे है।उनका ह्रदय सहानुभूति से भर जाता था और वह तुरंत उसके लिए कपड़े बनवा देते।गरीब विद्यार्थियों को शिक्षा-शुल्क और पुस्तकें खरीद कर देने में उन्हें बड़ा आत्मसुख मिलता था।इस प्रकार श्री ईश्वरचंद्र ने अपनी जानकारी में किसी भी विद्यार्थी को निर्धनता के कारण शिक्षा से वंचित नहीं होने दिया। यथासंभव सब की सहायता करते रहते थे।इस आर्थिक सहायता के साथ-साथ वह

अपने सहपाठियों को अध्ययन में भी सहायता करते थे।अपने पाठ पूरे कर लेने के बाद जो समय शेष बचता था, उसमें कमजोर विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे।उनकी सदैव यह इच्छा रहती थी यह सारे विद्यार्थी पढ़ने में तेज बने और अच्छी श्रेणियों में पास हो. सार्वदेशिक, वेदांत तथा दर्शन शास्त्र की योग्यता, प्रतियोगिता में, जिस समय सर्वप्रथम आकर ईश्वरचंद्र ने सैकड़ों रुपए के नगद पारितोषिक प्राप्त किए और गद्य तथा पद्य रचना में सर्वश्रेष्ठता प्रमाणित की उस समय ये भारत के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् स्वीकार कर लिये गए और उस स्वीकृति के प्रकाशनार्थ उस समय के श्रेष्ठतम विद्वानों ने एक सभा करके ईश्वरचंद्र का अभिनंदन किया और सर्वसम्मति से इन्हें 'विद्यासागर' की उपाधि दी और तब से वह ईश्वरचंद्र विद्यासागर के नाम से प्रसिद्ध हुए।इस समय उनकी आयु 19-20 साल से अधिक न थी.

संस्कृत कॉलेज की समग्र शिक्षा आत्मसात कर लेने के बाद विद्यासागर ने विद्या प्रसार करने का निश्चय किया। उनका विश्वास था कि जब तक देश में शिक्षा का समुचित प्रसार न होगा, जनता के हृदय में ज्ञान की ज्योति नहीं चलेगी, तब तक समाज का समुचित सुधार न होगा और वह विविध रूढ़ियों में ग्रस्त निकृष्ट जीवन जीता रहेगा। अपने इस सदउद्देश्य का सूत्रपात करने के लिए अपने गांव वीरसिंह में गए तब तक इधर उसी फोर्ट विलियम कॉलेज में प्रधान पंडित का पद रिक्त हो गया।कॉलेज के प्रिंसिपल श्री मार्शल साहब बड़े योग्य और मनुष्यों के पारखी व्यक्ति से।वे जिस समय संस्कृत कॉलेज में प्रिंसिपल थे उसी समय से ईश्वरचंद्र विद्यासागर के गुणों को जानते थे और समझते थे की विद्यासागर शिक्षा क्षेत्र के लिए बहुत ही उपयुक्त व्यक्ति सिद्ध होंगे। अतः उन्होंने स्थान रिक्त होते ही उनको गांव से बुलावा भेजा और प्रधान पंडित का पद ग्रहण कर लेने के लिए विशेष तौर पर अनुरोध किया।

विद्यासागर ने अनिच्छा इच्छा प्रकट करते हुए कहा कि, मैं नौकरी करके उपार्जित विद्या का उपयोग सीमित नहीं करना चाहता हूं।मैं स्वतंत्र रहकर समाज में शिक्षा प्रसार की सेवा

करना चाहता हूं।देश में अविद्या का अंधकार बुरी तरह फैला हुआ है।उसको दूर करने में यथासंभव प्रयत्न करना मेरा राष्ट्रीय कर्तव्य है।केवल अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए अपनी योग्यता का उपयोग करना बहुत बड़ा स्वार्थ है।इसी स्वार्थ के वशीभूत होकर देश के शिक्षित लोग, समाज का विचार छोड़कर सरकारी सेवाओं में जाकर स्थगित हो जाते हैं, जबकि आवश्यकता इस बात की है कि जब तक समाज में शिक्षा का प्रकाश नहीं फैल जाता, तब तक वे अपना समय शिक्षा प्रसार के पुण्य कार्य में लगाएं। शिक्षित व्यक्ति ही तो समाज में शिक्षा का प्रसार कर सकते हैं, मैं अपनी सेवाएं समाज को देकर एक उदाहरण प्रस्तुत करूँगा, जिससे कि दूसरे लोगों को प्रेरणा मिले और वह समाज से अविद्या का अंधकार दूर करने में जनता की सहायता करें।

पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर के सुंदर विचार सुनकर श्री मार्शल साहब बहुत प्रभावित हुए और उनकी दृष्टि में विद्यासागर का आदर और बढ़ गया।उन्होंने उनके विचारों की सराहना करते हुए कहा- “जहां तक समाज में विद्या प्रसार का प्रश्न है, स्कूलों तथा कॉलेजों के माध्यम से वही तो होता है।यदि शिक्षा के इन माध्यमों में कोई कमी या संशोधन करने की आवश्यकता दिखाई देती हो तो उसमें रहकर उनका सुधार किया जा सकता है।बाहर रहकर स्वतंत्र रुप से शिक्षा का प्रसार करना, आप जितना आवश्यक समझते हैं उतना ही आवश्यक है, शिक्षा-संस्थाओं को अच्छे तथा सुयोग्य शिक्षक मिलना। जिस समाज की संस्थाएं, सुयोग्य शिक्षकों से वंचित रहती हैं, वहां शिक्षा का कार्य होते दिखलाई देने पर भी वास्तविक शिक्षा का प्रसार नहीं हो पाता। बाहर रहकर तो आप अकेले ही शिक्षा का प्रसार करेंगे, किन्तु कॉलेज में अपनी योग्यता के आधार पर ऐसे बहुत से व्यक्ति निर्माण कर सकते हैं, जो समाज में आपके सदउद्देश्य को आगे बढ़ा सकें। इसीलिए मेरा सच्चा परामर्श है या कॉलेज के प्रधान पंडित का पद ग्रहण कर ले और उसी माध्यम से अपने उद्देश्य के लिए प्रयास करें। मेरा विचार है कि इस प्रकार आप सरकार से भी बहुत कुछ सहयोग तथा सहायता प्राप्त कर सकते हैं, जो कि आपके प्रयत्नों में बड़ी सीमा तक उपयोगी सिद्ध होगी।”

श्री विद्यासागर को प्रिंसिपल मार्शल के परामर्श में सार तथा सच्चाई मालूम हुई और उन्होंने कॉलेज में प्रधान पंडित का पद स्वीकार कर लिया। सबसे पहला सुधार जो विद्यासागर ने कॉलेज में किया वह यह है कि उसमें सभी जातियों के लड़कों को शिक्षा की सुविधा मिल गई।पहले कॉलेज में किन्हीं विशिष्ट जातियों के लड़कों को ही प्रवेश देने का नियम था। इससे कुछ उच्च जातियों के लड़के ही शिक्षा का लाभ उठा पाते थे।बाकी अन्य जातियों के लड़के अशिक्षित ही रह जाया करते थे।

विद्यासागर ने देखा कि इस हानिकारक प्रतिबंध से पूरे समाज में शिक्षा का प्रसार नहीं हो पा रहा है।केवल कुछ विशिष्ट वर्ग के ही लड़के ही थोड़ी बहुत शिक्षा पा पाते हैं।इस प्रकार के प्रतिबंध से तो न जाने अन्य जातियों के कितने ही प्रतिभाशाली बच्चे अशिक्षित ही रह जाते हैं। उनकी प्रतिभा का न तो विकास हो पाता है और न उसका उपयोग ही समाज के हित में है।विद्यासागर ने अनुभव किया कि इस कॉलेज प्रवेश में इस जातिय तथा वर्गीय प्रतिबंध का उन्मूलन होना बहुत आवश्यक है।यह एक बड़ी क्षति है और इसके कारण देश की स्वतंत्रता प्रगति में बाधा पड़ती है।जब सभी वर्गों और सभी जातियों के बच्चों को समान रुप से पढ़ने का अवसर मिलेगा, तभी देश में शिक्षा प्रसार का उद्देश्य सिद्ध हो सकेगा। केवल 12 वर्ग के पड़े और अन्य सारे वर्गों के निरक्षर रहने से किसी समाज को शिक्षित नहीं माना जा सकता। देश और समाज का समुचित विकास तभी हो सकता है, जब उसके सभी वर्गों और सभी जातियों के लोगों में शिक्षा का समुचित प्रसार हो.

लेखक संकलक - पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य

-